Gyanvividha, Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025 : PP-100-102

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025
Page No.- 100-102
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

डॉ. पुरुषोत्तम प्रसाद
विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान,
बालगंगा महाविद्यालय, सेन्दुल (केमर)
टिहरी, गढ़वाल, उत्तराखण्ड.

Corresponding Author :

डॉ. पुरुषोत्तम प्रसाद
विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान,
बालगंगा महाविद्यालय, सेन्दुल (केमर)
टिहरी, गढ़वाल, उत्तराखण्ड.

पर्यावरण प्रदूषण सुधार में विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों की राजनीतिक सहभागिता

पर्यावरण प्रदूषण को सुधारने में राजनीतिक गतिविधियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भूमण्डलीय पर्यावरण जीवन का आधार है। समस्त प्राणी इसी पर निवास करते हैं, जिसे प्राकृतिक तत्वों ने चारों ओर से घेर रखा है। यह चारों ओर का वातावरण प्राकृतिक दशाओं का एक मिला जुला रूप है जो ऊर्जा, धरातल, जलवायु, मिट्टी, हवा, पानी तथा जैव मण्डल से निर्मित है। इस प्रकार ये सभी प्रकृति प्रदत्त शक्तियां वातावरण या पर्यावरण का निर्माण करती है[1]। मानव समाज का प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है प्रकृति के प्रभाव से मानव के क्रियाकलापों में परिवर्तन हो जाता है। यद्यपि आधुनिक मनुष्य इन प्राकृतिक तत्वों का पूर्णतः दास तो नहीं है परन्तु वह इसके प्रभावों से दूर भी नहीं रह सकता है।

मनुष्य ने जितनी भी विकास और विनाश की प्रक्रियायें की है इनका आधार भी प्राकृतिक पर्यावरण ही रहा है। जब प्राकृतिक शक्तियों का कार्य ठीक से होता है यानि प्राकृतिक तौर पर बना रहता है तब मानव अपना विकास करता है। लेकिन जब इन प्राकृतिक शक्तियों की गतियां विपरीत काम करने लगती हैं या व्यवस्था एक दूसरे के संघर्ष में आ जाती है[2] तब मनुष्य का विनाश शुरु हो जाता है। इन प्रणालियों के विपरीत गमन को ही पर्यावरण संकट कहा गया है। इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट रूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि हमारी जीवन दायिनी प्रणालियों में विकृति ही वस्तुतः पर्यावरण संकट है। जीवनदायिनी प्रणालियां प्राकृतिक शक्तियों के रूप में प्रत्येक जीव-जन्तु और पेड़-पौधों को जीवन प्रदान करती है अर्थात इनके माध्यम से जीवन संचार होता है।

आज मनुष्य ने आर्थिक प्रगति की तीव्र प्रतिस्पर्धा में औद्योगीकरण, शहरीकरण एवं विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों

का अत्यधिक दोहन किया है। जिसके परिणाम स्वरुप आज विश्व स्तर पर तापमान की वृद्धि, हरित भवन प्रभाव, ओजोन विनाश, अम्लवृष्टि तथा मरुस्थलीकरण जैसे गम्भीर पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हो रहे हैं। वर्तमान समय में पर्यावरण की समस्या से पूरा विश्व चिन्तित है। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण राजनीति का प्रमुख मुद्दा बनकर उभरा है। जिन क्षेत्रों में समृद्ध प्राकृतिक सम्पदा की प्रचुरता तथा मानव की राजनीतिक क्रियाशीलता अधिक रही है। वे आज विश्व के अग्रणी राष्ट्रों की सूची में सम्मिलित हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, जर्मनी आदि इसके उदाहरण हैं[3]। इसके साथ-साथ किसी स्थान विशेष के पर्यावरण के स्वरुप, वाणिज्य, व्यापार, संस्कृति, भूदृश्य आदि के विकास में सरकार की नीतियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है[4]। अतः किसी देश की सरकार की नीतियों पर ही राष्ट्र के पर्यावरण का उन्नयन व अवनयन निर्भर करता है इस प्रकार पर्यावरण व राजनीतिक प्रक्रियाएं परस्पर सम्बन्धित है।

पर्यावरण असन्तुलन की गम्भीर समस्या में उपनिवेशवाद का भी प्रमुख स्थान है पाश्चात्य राष्ट्रों की जरुरतों को पूरा करने हेतु देश दुनिया के पर्यावरण को बर्बाद किया जा रहा है। उपनिवेशवाद के खत्म होने के बावजूद आज के दौर में भी देश दुनिया की जितनी जमीन का उपयोग पश्चिमी देशों के खाने और अन्य जरुरतों को पूरा करने में हो रहा है, वह 1940 में उपनिवेशों के रुप में मौजूद जमीन से कई गुना अधिक है। 1960 के बाद से पशु फार्म बनाने में मध्य अमेरिका का एक चौथाई वन प्रदेश बर्बाद किया जा चुका है[5]। यहां तैयार होने वाले मांस का 85 से 95 फीसदी हिस्सा अमेरिका में बर्गर के रुप में प्रयोग किया जाता है। मध्य अमेरिका में मांस वाले पशु तैयार करने में अमेरिका की तुलना में आधा पैसा ही खर्च होता है और वह सस्ता मांस डिब्बा और लोकप्रिय खाद्य पदार्थ तथा सस्ते बर्गर तैयार करने के काम में लाया जाता है। परन्तु मध्य अमेरिका में इस कारण अमूल्य पर्यावरण नष्ट हों रहा है। जिसे उपजाऊ जमीन पर ये उष्ण कटिबन्धीय वन लगे हुए हैं। उसका दुरुपयोग वहां पशु फार्म खोलने में हो रहा है। पांच से सात साल में ही उनकी उत्पादकता बहुत कम हो जाती है और फार्म वाले अपने पशुओं के साथ अन्य वनों को उजाड़ने चल देते हैं।

मौसम परिवर्तन का प्रमुख कारण ग्रीन हाउस गैसों का बढ़ता उत्सर्जन है। जिसके लिए मुख्य रुप से औद्योगिक देश जिम्मेदार है। जिस गति से औद्योगिक गतिविधियां बढ़ी है उसी गति से वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैसों का संकेन्द्रण भी बढा है। इनके मुख्य स्त्रोत हैं फैक्ट्रियों में कोयले का जलना, तेल और गैस का जलना, प्रदूषण फैलाने में तेल का महत्वपूर्ण स्थान है। तेल कम्पनियां पूरे विश्व में मानव अधिकार का उल्लघंन करते हुए धरती को विनाश के कगार पर पहुँचाने में लगी हुई है। वैज्ञानिकों का मानना है कि दुनियां के 122 उद्योग कुल कार्बन डाईऑक्साइड का 80 (अस्सी प्रतिशत) उत्सर्जित करते हैं[6]। अमेरिका में परिवहन अकेले 31 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जित करता है। छोटी आबादी वाला देश होने के बावजूद वर्ष 1950 में अमेरिका ने अकेले रुस और चीन के मुकाबले तीन गुना कार्बन डाईआक्साइड वायुमण्डल में उत्सर्जित की[7]।

1990 से 2000 के बीच, 1990 के उत्सर्जन स्तर में कमी लाने के बजाय अमेरिका उत्सर्जन में 11 प्रतिशत की वृद्वि हुई है। तापमान वृद्धि के प्रति उपेक्षा का स्वरुप तब और अधिक भयानक प्रतीत होता है जब यह तथ्य सामने आता है कि अमेरिका जापान सहित युरोप के 21 देश (औद्योगिक दृष्टि से विकसित) सम्पूर्ण विश्व के 80वें भाग में फैले हैं। पर्यावरण में छोड़ी जाने वाली ग्रीन हाउस गैसों का लगभग 25 प्रतिशत उत्सर्जन तो केवल संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा ही होता है[8]।

वायु प्रदूषण के नियमित सम्पर्क में रहने पर मनोभ्रंश का खतरा बढ़ जाता है। मनोभ्रंश अर्थात डिमेंशिया या भूलने की बीमारी का दुनिया में बढ़ता खतरा इतना बड़ा है कि आगामी पच्चीस वर्ष में इस

बीमारी से ग्रस्त लोगों की संख्या तीन गुना हो जायेगी। वायु प्रदूषण में खासकर कार से निकलने वाले धुएँ या उत्सर्जन को गम्भीर माना है। दलैसेट प्लैनेटरी हेल्थ पत्रिका में प्रकाशित इस अध्ययन से पता चलता है कि पी,एम 2.5 के प्रत्येक 10 माइक्रोग्राम प्रति धन मीटर कालिख के चलते जोखिम 13 प्रतिशत बढ़ जाता है यह कालिख वाहनों के धुएँ और जलती हुई लकड़ी जैसे स्त्रोतों से आती है। चिंता इसलिए बढ़ जाती है कि वायु प्रदूषण में समय के साथ लगातार वृद्धि हो रही है रोकने के जितने समर्पित प्रयास विश्व स्तर पर होने चाहिए नहीं हो रहे हैं[9]।

निष्कर्ष : पर्यावरण प्रदूषण की इस स्थिति को रोकने के लिए आज तक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में सर्व-सहमति से कोई निर्णय नहीं लिया जा सका है। क्योंकि अमेरिका और जापान जैसे विकसित देशों ने अपना कोई स्पष्ट दृष्टिकोण ही नहीं अपनाया और ना ही इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर विकसित देशों ने कोई ईमानदारी के प्रयास किये हैं। अमेरिका और विकसित देशों ने अपने उत्तरदायित्व से ध्यान हटाने के लिए कई तरह के भ्रामक प्रचार भी किये। जैसे कभी आधुनिक उपभोक्तावादी तो कभी विकासशील देशों में की जा रही वनों की कटाई को दोष दिया गया। इस प्रकार के कुप्रचार में उनके साथ अनेक मौसम वैज्ञानिक तक शामिल किये गये जो आज तक जनमत को वास्तविकता से दूर रखने के प्रयासों में जुटे हैं इस तरह से यह जिम्मेदारी विकासशील देशों पर डालने की पूरी कोशिश की जाती है। जबकि विकासशील देशों की ओर से प्रदूषण फैलाने की वृहदतर जिम्मेदारी विकसित देशों पर रखी जाती है उनका मानना है कि विकसित देशों में औद्योगिकीकरण के कारण प्रदूषण बढ़ा है तथा प्रचूर संसाधन होने के कारण पर्यावरण विनाश के खतरों से निपटने में वे समर्थ भी हैं। इसलिए विकासशील देशों की पर्यावरण प्रदूषण में अपेक्षाकृत कम जिम्मेदारी है। उनकी घरेलू समस्याएँ भी अपेक्षाकृत अधिक है तथा संसाधन सीमित हैं।

सन्दर्भ :

1. डबोस रेने, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ दि एनवा-यरमेंट हयूस्टन मैफ्टिन कम्पनी न्यूयार्क, 1494, पृ.- 204.
2. सिहं, वीर, वन्य जीवों की सुरक्षा की एक सार्थक रणनीति षैलसुता, मासिक पत्रिका, मार्च 1995, पृ.-4.
3. डोले, टीमोथ एण्ड डॉग मेकाइर्न, एनवायरमेंट एण्ड पॉलिटिक्स, एटलेज, लन्दन, 1998, पृ.-11.
4. रोसेनबीम, वाल्टर ए एनवायर मेंटल पॉलिटिक्स एण्ड पॉलिसि, एफीलेटेड इस्टवैस्ट प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1991, पृ.-69.
5. अर्थस्केन, ट्रोपिकल मोइस्टः दी रिर्सोस दी पीपल दी थ्रेट, अर्थस्केट, लंदन, 1982, पृ.-33.
6. बेनेडीक, आर0 ई0 ओजन डिप्लोमेसी, न्यू डायरेक्शनस इन सेफगडिंग द प्लेनेट कैम्बीज मास, 1991, पृ.-17.
7. रोसेनबीम, वाल्टर ए इनवारमेंटल पॉलिटिक्स एण्ड पालिसी, पूर्वोक्त, पृ.-59.
8. न्यूयॉर्क टाइम्स, जून 24, 1988.
9. सम्पादकीय, हिन्दुस्तान दैनिक समाचार पत्र, 28 जुलाई, सोमवार 2025.

•